॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

योगचूडामणि उपनिषद

विषय सूची

॥अथ योगचूडामण्युपनिषत् ॥ 3
योगचूडामणि उपनिषद..... 5
शान्तिपाठ 44

॥ श्री हरि ॥

॥अथ योगचूडामण्युपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

मूलाधारादिषट्चक्रं सहस्रारोपरि स्थितम् ।
योगज्ञानैक फलकं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ योगचूडामण्युपनिषत् ॥

योगचूडामणि उपनिषद

ॐ योगचूडामणिं वक्ष्ये योगिनां हितकाम्यया ।
कैवल्यसिद्धिदं गूढं सेवितं योगवित्तमैः ॥ १॥

योग चूड़ामणि उपनिषद् को योगियों के हित की कामना से वर्णन करता हूँ, जो योगवेत्ताओं के द्वारा सेवन किया जाने वाला परम गूढ़ तथा कैवल्य (मोक्ष) सिद्धि देने वाला है॥१॥

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥ २॥

एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् ।
षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ॥ ३॥

स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत् ।
चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम् ॥ ४॥

नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम् ।

षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ॥ ५॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-इस प्रकार योग को छ: अंगों वाला कहा गया है। दो प्रकार के आसनों का यहाँ वर्णन है, एक सिद्धासन दूसरा पद्मासन । अपने शरीर के भीतर जो साधक षट्चक्र, षोडश-आधार, त्रिलक्ष्य और पाँच आकाशों को नहीं देख पाता, उसे सिद्धि कहाँ मिल सकती है? शरीर में स्थित षट्चक्रों में आधारचक्र (मूलाधार चक्र) चार दल वाला है, स्वाधिष्ठान चक्र में छः दल हैं । दस दल वाला चक्र नाभि में स्थित है, द्वादशदल का पद्मचक्र हृदय में है, विशुद्धचक्र षोडश दल वाला तथा दो दल का चक्र भूमध्य में (आज्ञाचक्र के रूप में) स्थित है॥२-५॥

सहस्रदलसङ्ख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि ।
आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ॥ ६॥

योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ।
कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजं तु चतुर्दलम् ॥ ७॥

तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता ।
तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ॥ ८॥

सहस्र दल-कमल ब्रह्मरन्ध्र के महापथ में स्थित है। मूलाधार प्रथम चक्र है तथा स्वाधिष्ठान दूसरा चक्र है। दोनों के बीच में योनि स्थान (कुण्डलिनी) स्थित है। जगत् की उत्पत्ति का कारण होने से उसे कामरूप कहा जाता है। गुदास्थान में चार दल वाला कमल स्थित है,

जिसे 'काम' कहा गया है। उसी के बीच सिद्ध पुरुषों के द्वारा वन्दित पश्चिमाभिमुख महालिंग स्थित है॥६-८॥

नाभौ तु मणिवद्बिम्बं यो जानाति स योगवित् ।
तप्तचामीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ॥ ९॥

त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरधोमेढ्रात्प्रतिष्ठितम् ।
समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ १०॥

नाभि स्थान में मणि की आकृति वाले मणिपूर चक्र को जानने वाला ही योगी है । तपाये हुए सोने के समान आभा वाला, विद्युत् की तरह प्रकाशमान त्रिकोण युक्त अग्नि मेढ़ में प्रतिष्ठित है। समाधि अवस्था में उस स्थान पर अनन्त विश्वतोमुख (सब ओर प्रकाशित) परमज्योति के दर्शन होते हैं॥९-१०॥

तस्मिन्दृष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते ।
स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः ॥ ११॥

स्वाधिष्ठाश्रयादस्मान्मेढ्रमेवभिधीयते ।
तन्तुना मणिवत्प्रोतो योऽत्र कन्दः सुषुम्नया ॥ १२॥

योगाभ्यास के समय उस अग्निमयी ज्वाला के दर्शन कर लेने पर संसार के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। प्राण का निवास स्वाधिष्ठान चक्र में कहा गया है। प्राण को ही 'स्व' कहते हैं।स्वाधिष्ठान

में स्थित होने के कारण उसे 'मेढ़' भी कहते हैं। जिस प्रकार मणि में तागा पिरोया होता है, उसी प्रकार कन्द (नाड़ी समूह) सुषुम्ना से युक्त है॥११-१२॥

तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् ।
द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते ॥ १३॥

तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति ।
ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्डवत् ॥ १४॥

तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।
तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता ॥ १५॥

प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दशस्मृताः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयगा ॥ १६॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुसा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥ १७॥

नाभि मण्डल में स्थित द्वादशदल युक्त मणिपूर चक्र पाप-पुण्य रहित है, जब तक इसका तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक जीव को संसार चक्र में ही भ्रमण करना पड़ता है।पक्षी के अण्डे के आकार वाली योनि अर्थात् कुण्डलिनी, मेढ़ और नाभि के मध्य स्थित है। बहत्तर हजार नाड़ियों का जाल पूरे शरीर में वहीं से फैला है, उनमें से बहत्तर नाड़ियाँ मुख्य हैं। इनमें भी प्रमुख नाड़ियाँ दस कही गई

हैं। १. इड़ा, २. पिंगला, ३. सुषुम्ना, ४. गांधारी, ५. हस्तिजिह्वा, ६. पूषा, ७. यशस्विनी, ८. अलम्बुसा, ९. कुहू और १०. शंखिनी॥१३-१७॥

एतन्नाडीमहाचक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा ।
इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥ १८॥

सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ।
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ॥ १९॥

यशस्विनी वामकर्णे चानने चापुअलम्बुसा ।
कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी ॥ २०॥

नाड़ियों के इस महाचक्र का ज्ञान योगियों को होना चाहिए। शरीर में इड़ा नाड़ी (नासिका के) बायीं ओर और पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर स्थित रहती है। इड़ा-पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है। दायें नेत्र में हस्तिजिह्वा और बायें नेत्र में गांधारी का निवास है। पूषा तथा यशस्विनी क्रमशः दायें-बायें कान में स्थित हैं। मुँह में अलम्बुसा का निवास है। जननेन्द्रिय में कुहू एवं मूलस्थान में शंखिनी नाड़ी का निवास है॥१८-२०॥

एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ते नाडयः क्रमात् ।
इडापिङ्गलासौषुम्नाः प्राणमार्गे च संस्थिताः ॥ २१॥

सम्पूर्ण शरीर के भीतर एक-एक द्वार पर एक-एक नाड़ी स्थित है और प्राणमार्ग में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ स्थित हैं॥२१॥

सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
प्राणापानसमानाख्या व्यानोदानौ च वायवः ॥ २२॥

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले ॥ २३॥

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्चवायवः ॥ २४॥

सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि देवता प्राणों के वाहक हैं। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान-ये पाँच प्राणवायु कहे गये हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय-ये पाँच उपप्राणवायु कहे गये हैं। शरीर के अन्दर हृदय में (मुख्य) प्राणवायु, गुदा स्थान में अपान, नाभि स्थान में समान, गले में उदान एवं पूरे शरीर में व्यानवायु स्थित रहता है। ये प्रधान प्राणवायु शरीर के पाँच स्थानों में स्थित हैं॥२२-२४॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तथा ।
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ २५॥

ऊर्ध्ववायु (डकार) में नाग नामक उपप्राण, आँखों की पलक झपकने में कूर्मवायु, कृकल छींकने में एवं देवदत्त की स्थिति बँभाई लेने में होती है॥२५॥

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवजन्तवः ॥ २६॥

सम्पूर्ण शरीर में धनञ्जय वायु इस प्रकार से व्याप्त है कि मृत्यु के बाद भी शरीर को नहीं छोड़ता है। इन्हीं नाड़ियों में जीव (प्राण) भ्रमण करते रहते हैं॥२६॥

आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथा चलति कन्दुकः ।
प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न तिष्ठति ॥ २७॥

खिलाड़ियों के द्वारा इधर से उधर फेंकी हुई गेंद की तरह जीव भी प्राण, अपान आदि वायुओं से स्थिर नहीं रह पाता अर्थात् सदैव गतिशील रहता है॥२७॥

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति ।
वामदक्षिणमार्गाभ्यां चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥ २८॥

यह जीव प्राणादि वायुओं के वशीभूत होकर नीचे-ऊपर गमन करता हुआ बायें एवं दायें मार्ग में भी आता-जाता है। गमनचक्र तीव्रता से चलने के कारण वह दिखाई नहीं पड़ता॥२८॥

रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः ।
गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ॥ २९॥

रस्सी से बँधा हुआ श्येन पक्षी ऊपर उड़ता हुआ भी जिस प्रकार खींच लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार गुणों से आबद्ध यह जीव भी प्राण और अपान वायुओं के द्वारा खींचा जाता है॥२९॥

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च गच्छति ।
अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ॥ ३०॥

प्राण अपान को खींचता है एवं अपान प्राण को खींचता है, इसलिए यह जीव प्राण और अपान की इस क्रिया के द्वारा निरंतर ऊपर-नीचे आता जाता रहता है। प्राण एवं जीव की इस अधः एवं ऊर्ध्वगमन प्रक्रिया को जानने वाला ही योगवेत्ता है॥३०॥

ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ ३१॥

श्वास'स' कार ध्वनि (वायु) के माध्यम से भीतर और 'ह' कार के साथ बाहर आती है। इस तरह यह जीव हंस-हंस (हंसमंत्र) का जप सदैव करता रहता है॥३१॥

हंसहंसेत्यमुं मत्रं जीवो जपति सर्वदा ।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ३१॥

दिन-रात निरन्तर जप करते रहने से यह जीव इक्कीस हजार छ: सौ मंत्र नित्य जपता है॥३२॥

एतत्सङ्ख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।
अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा ॥ ३३॥

अस्याः सङ्कल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ॥ ३४॥

योगियों के लिए मुक्ति प्रदात्री यही अजपा गायत्री है। इसके संकल्प मात्र से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसके समान न कोई विद्या, न कोई जप, न कोई ज्ञान पहले हुआ है और न भविष्य में होगा॥३३-३४॥

अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ।
कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी ॥३५॥

यह गायत्री प्राण को धारण करने वाली प्राणविद्या है-महाविद्या है, जो कुण्डलिनी से उद्भूत है। इस प्रकार जो जान लेता है, वही वेदवेत्ता है॥३५॥

प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित् ।
कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ॥ ३६॥

कुण्डलिनी शक्ति कन्द के ऊर्ध्वभाग में आठ कुण्डलों की आकृति में व्याप्त होकर ब्रह्म द्वार के मुँह को अपने मुख से ढककर सदैव स्थित रहती है॥३६॥

ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाय तिष्ठति ।
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् ॥ ३७॥

जिस मनोमय ब्रह्म द्वार (सुषुम्ना) में प्रवेश किया जाता है, उसी द्वार (मुख) को अपने मुख से ढककर यह परमेश्वरी शक्ति (कुण्डलिनी) सोई रहती है॥३७॥

मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह ॥ ३८॥

वह्नियोग (अग्नियोग) के द्वारा जाग्रत् होकर यह प्रकाश के रूप में मन और प्राणवायु के साथ सुषुम्ना नाड़ी के भीतर होकर सुई की तरह ऊपर की ओर चलती है॥३८॥

सूचिवद्गात्रमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया ।
उद्घाटयेत्कवाटं तु यथाकुञ्चिकया गृहम् ।
कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ ३९॥

कुंजी के द्वारा जिस तरह से घर का किवाड़ (ताला) खोलते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी के द्वारा योगी लोग मुक्ति का द्वार खोल लेते हैं॥३९॥

कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वा तु पद्मासनं
गाढं वक्षसि संनिधाय चुबुकं ध्यानं च तच्चेष्टितम् ।
वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्छारयेत्पूरितं
मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः ॥ ४०॥

दृढ़तापूर्वक पद्मासन लगाकर हाथों को ऊपर-नीचे गोदी में रखकर सम्पुटित करे, पुनः सिर नीचा करके ठोड़ी को छाती से लगाये, इसके बाद ब्रह्म में ध्यान को एकाग्र करके, बार-बार श्वास को भीतर खींचे और बाहर निकाले । प्राणवायु अन्दर ले जाए और अपान वायु ऊपर ले जाए । इस तरह प्राणायाम करने से मनुष्य को अतुल शक्ति की अनुभूति होती है॥४०॥

अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमसंजातवारिणा ।
कट्वम्ललवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ॥४१॥

इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास के श्रम से जो पसीना निकलता है, उसे शरीर में ही मसले लेना चाहिए तथा नमकीन, खट्टे, कडुवे पदार्थों का परित्याग करना चाहिए और दूध एवं दूध से बने भोजन का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए॥४१॥

ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः ।
अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥ ४२॥

ब्रह्मचारी और मिताहार वाला योगी यदि योग के अभ्यास में लग जाए, तो एक वर्ष में ही योग की सिद्धि प्राप्त कर लेगा, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए॥४२॥

सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुञ्जते शिवसम्प्रीत्या मिताहारी स उच्यते ॥ ४३॥

योग के साधक को मधुर और स्निग्ध भोजन ही लेना चाहिए,(आधा पेट भोजन,चौथाई पानी तथा) चौथाई भाग खाली रखे। इस प्रकार भगवान् को समर्पित करके जो भोजन करता है, उसे मिताहारी कहते हैं॥४३॥

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलीकृतिः ।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा ॥ ४४॥

आठ कुण्डलों वाली कन्द के ऊर्श्वभाग में जो कुण्डलिनी शक्ति है, वह योगियों के लिए मोक्ष देने वाली तथा अज्ञानियों के लिए बन्धनकारक कही गई है॥४४॥

महामुद्रा नभोमुद्रा ओड्याणं च जलन्धरम् ।
मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनम् ॥ ४५॥

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध और मूलबन्ध को जो जानता है, वह योगी मुक्ति को प्राप्त करता है॥४५॥

पार्ष्णिघातेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद्दृढम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते ॥ ४६॥

एड़ी से दबाव डालकर योनि (सीवन) स्थान को पीड़ित करते हुए दृढ़तापूर्वक संकुचित करे, अपान वायु को ऊपर की ओर खींचने की इस प्रक्रिया को मूलबन्ध कहा जाता है॥४६॥

अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः ।
युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ४७॥

इस प्रकार प्राण और अपान को एक में मिलाया जाता है, इससे मल-मूत्र कम हो जाता है। इस प्रकार मूलबन्ध का अभ्यास करने से वृद्ध भी युवा हो जाता है॥४७॥

ओड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः ।
ओड्डियाणं तदेव स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ४८॥

महोपक्षी (गिद्ध आदि) जिस प्रकार विश्राम के लिए.(आकाश में अत्यधिक ऊँचे) उड़ते हैं, उसी तरह उड्डियान बन्ध का अभ्यास मृत्यु रूपी हाथी को पछाड़ने के लिए सिंह के समान है। (बड़े पक्षियों को एक विशेष प्रकार से उड़ने में विश्राम प्राप्त होता है, जिससे उन्हें शक्ति प्राप्त हो जाती है।)॥४८॥

उदरात्पश्चिमं ताणमधो नाभेर्निगद्यते ।
ओड्याणमुदरे बन्धस्तत्र बन्धो विधीयते ॥ ४९॥

पेट को नाभि के नीचे तानना अर्थात् खींचना पश्चिमोत्तान कहलाता है। वहीं पेट में यह उड्डियान बंध भी किया जाता है॥४९॥

बध्नाति हि शिरोजातमधोगामि नभोजलम् ।
ततो जालन्धरो बन्धः कष्टदुःखौघनाशनः ॥ ५०॥

जो शरीर में नीचे की ओर प्रवहमान आकाश-जल (खेचरी मुद्रा द्वारा क्षरित होने वाला) को शिरोभाग में रोककर रखता है, उसे जालंधर बंध कहते हैं, यह दु:खों और कष्टों का नाश कर देता है॥५०॥

जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे ।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥ ५१॥

जालन्धर बंध में सामने की ओर सिर झुकाकर गले से नीचे ठोढ़ी को हृदय से स्पर्श करना होता है। इस से अमृत न तो अग्नि की ओर गिरता है और न वायु की ओर गमन करता है, स्थिर हो जाता है॥५१॥

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ५२॥

दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य स्थित करे एवं जीभ को गले की ओर पीछे लौटाकर कपाल कुहर (गले के मध्य तालु) में प्रवेश कराये, इस प्रकार की क्रिया को खेचरी मुद्रा कहते हैं॥५२॥

न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा ।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ५३॥

जो खेचरी मुद्रा को जानता और साधना करता है उसे रोग, मरण, भूख-प्यास और मूछ आदि से छुटकारा प्राप्त हो जाता है॥५३॥

पीड्यते न च रोगेण लिख्यते न स कर्मभिः ।
बाध्यते न च केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ५४॥

खेचरी मुद्रा जानने वाला न तो रोग से कष्ट पाता है और न कर्मों में ही उसकी आसक्ति होती है तथा उसके पास तक कोई विघ्न भी नहीं पहुँच पाते॥५४॥

चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे यतः ।
तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता ॥५५॥

जिसकी साधना करने से चित्त और जिह्वा आकाश में विचरण करते हैं, उस खेचरी मुद्रा को सभी सिद्ध लोग प्रणाम करते हैं॥५५॥

बिन्दुमूलशरीरणि शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः ।
भावयन्ती शरीराणि आपादतलमस्तकम् ॥ ५६॥

सिर से लेकर पैर तक शरीर के सभी अंगों का जिनके द्वारा पोषण होता है, उन सभी शिराओं का मूल बिन्दु खेचरी मुद्रा ही है॥५६॥

खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः ।
न तस्य क्षीयते बिन्दुः कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥ ५७॥

खेचरी मुद्रा के द्वारा जिस साधक ने जीभ के ऊपर कपाल कुहर को ढक लिया है, उस साधक का रमणी के आलिंगन से भी बिन्दुपात नहीं हो सकता॥५७॥

यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
यावद्बद्धा नभोमुद्रा तावद्बिन्दुर्न गच्छति ॥ ५८॥

जब तक साधक ने खेचरी मुद्रा को बाँध रखा है, तब तक बिन्दु नहीं जाता है और जब तक शरीर में बिन्दु स्थित है, तब तक मृत्यु का क्या भय है?॥५८॥

ज्वलितोऽपि यथा बिन्दुः सम्प्राप्तश्च हुताशनम् ।
व्रजत्यूर्ध्वं गतः शक्त्या निरुद्धो योनिमुद्रया ॥ ५९॥

यदि जाज्वल्यमान अग्नितत्त्व में बिन्दुपात भी हो जाये, तो उसको योनिमुद्रा के द्वारा बलपूर्वक रोका और ऊर्ध्वगामी बनाया जा सकता है॥५९॥

स पुनर्द्विविधो बिन्दुः पाण्डरो लोहितस्तथा ।
पाण्डरं शुक्लमित्याहुर्लोहिताख्यं महारजः ॥ ६०॥

सफेद और लाल दो वर्ण (रंग) का बिन्दु होता है। श्वेत को शुक्ल (शुक्र) नाम दिया गया तथा लाल को महारज कहा गया है॥६०॥

सिन्दूरव्रातसङ्काशं रविस्थानस्थितं रजः ।
शशिस्थानस्थितं शुक्लं तयोरैक्यं सुदुर्लभम् ॥ ६१॥

सिन्दूर के समान ज्योतित रविस्थान में रज का निवास स्थान है तथा चन्द्रस्थान में शुक्ल का निवास स्थान है। शुक्ल और रज का संयोग बड़ा कठिन होता है॥६१॥

बिन्दुर्ब्रह्मा रजः शक्तिर्बिन्दुरिन्दू रजो रविः ।
उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥ ६२॥

बिन्दु ब्रह्मारूप है तथा रज शक्तिस्वरूप है, बिन्दु चन्द्ररूप और रज सूर्यरूप है। इन दोनों का योग (मिलन) होने से ही परमपद की प्राप्ति होती है॥६२॥

वायुना शक्तिचालेन प्रेरितं च यथा रजः ।
याति बिन्दुः सदैकत्वं भवेद्दिव्यवपुस्तदा ॥ ६३॥

जब वायु (प्राणायाम) से शक्तिचालिनी मुद्रा के द्वारा गमनशील रज बिन्दु से एकाकार हो जाता है, तब शरीर दिव्य हो जाता है॥६३॥

शुक्लं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्येण सङ्गतम् ।
तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित् ॥ ६४॥

रज का संयोग सूर्य में और शुक्ल (शुक्र) का संयोग चन्द्र में जिस प्रकार होता है, उस विषय को और दोनों के एकाकार होने को जानने वाला साधक योगवेत्ता कहा जाता है॥६४॥

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः ।
रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते ॥ ६५॥

जिस साधना के द्वारा नाड़ी-समूह का शोधन किया जाता है तथा सूर्य-चन्द्र को चलाया जाता है एवं रस का शोषण किया जाता है,उसे 'महामुद्रा' कहते हैं॥६५॥

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्घ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् ।
आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचये-
त्सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते ॥ ६६॥

बायें पैर से योनि स्थान पर दबाव डालते हुए, ठोढ़ी को छाती से लगाये और दायाँ पैर सीधा फैलाकर दोनों हाथों से पैर की अँगुलियों सहित पैर पकड़कर दोनों कुक्षियों अर्थात् पेट में पूरा श्वास भरकर धीरे-धीरे बाहर निकाले । यह महामुद्रा की क्रिया समस्त प्रकार की व्याधियों को नष्ट करती है॥६६॥

चन्द्रांशेन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः ।
या तुल्या तु भवेत्सङ्ख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ ६७॥

अभ्यास क्रम में सर्वप्रथम बायीं नासिका चन्द्रअंश' से श्वास खींचकर रेचन करते हुए अभ्यास करे, फिर दायीं नासिका 'सूर्यअंश' से श्वास खींचकर रेचन का अभ्यास करना चाहिए। जब दोनों स्वर (चन्द्र-सूर्य) समान हो जाएँ, तब अभ्यास बन्द करना चाहिए॥६७॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः ।
अतिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ६८॥

इस 'महामुद्रा' के करने से पथ्य-अपथ्य अथवा सभी तरह का नीरस भोजन सरस हो जाता है। भोजन अधिक कर लेने पर तथा विष भी खा लेने पर वह अमृत के समान पच जाता है॥६८॥

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत् ॥ ६९॥

इस महामुद्रा के अभ्यास करने वाले साधक को इसके प्रभाव से क्षय, कुष्ठ, गुदावर्त (भगन्दर), गुल्म (तिल्ली बढ़ना), अजीर्ण आदि एवं भविष्य में होने वाले सभी रोगों से छुटकारा मिल जाता है॥६९॥

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् ।

गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित् ॥ ७०॥

यह महामुद्रा साधकों को महासिद्धि देने वाली है, इसको हर किसी को (अनधिकारी को) नहीं बताना चाहिए, प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए॥७०॥

पद्मासनं समारुह्य समकायशिरोधरः ।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ॥ ७१॥

एकान्त स्थान में पद्मासन लगाकर कमर से सिर तक शरीर को सीधा करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को जमाकर अव्यय प्रणव (ॐ) का जप करना चाहिए॥७१॥

ॐ नित्यं शुद्धं बुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनं
निराख्यातमनादिनिधनमेकं तुरीयं यद्भूतं
भवद्भविष्यत्परिवर्तमानं सर्वदाऽनवच्छिन्नं
परंब्रह्म तस्माज्जाता परा शक्तिः स्वयं ज्योतिरात्मिका ।
आत्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः ।
अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । एतेषां पञ्चभूतानां
पतयः पञ्च सदाशिवेश्वररुद्रविष्णुब्रह्माणश्चेति ।
तेषां ब्रह्मविष्णुरुद्राश्चोत्पत्तिस्थितिलयकर्तारः ।
राजसो ब्रह्मा सात्विको विष्णुस्तामसो रुद्र इति एते त्रयो गुणयुक्ताः ।
ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव । धाता च सृष्टौ
विष्णुश्च स्थितौ रुद्रश्च नाशे भोगाय चन्द्र इति
प्रथमजा बभूवुः । एतेषां ब्रह्मणो लोका देवतिर्यङ्-

रस्थावराश्च जायन्ते । तेषां मनुष्यादीनां
पञ्चभूतसमवायः शरीरम् । ज्ञानकर्मेन्द्रियै-
र्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिचित्ताहङ्कारैः
स्थूलकल्पितैः सोऽपि स्थूलप्रकृतिरित्युच्यते । ज्ञानकर्मेन्द्रियै-
र्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिभिश्च
सूक्ष्मस्थोऽपि लिङ्गमेवेत्युच्यते । गुणत्रययुक्तं कारणम् ।
सर्वेषामेवं त्रीणि शरीराणि वर्तन्ते । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-
तुरीयाश्चेत्यवस्थाश्चतस्रः तासामवस्थानामधिपतय-
श्चत्वारः पुरुषा विश्वतैजसप्राज्ञात्मानश्चेति ।
विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
आनन्दभुक्तया प्राज्ञः सर्वसाक्षीत्यतः परः ॥ ७२॥

ॐ निरंजन, निर्विकल्प, नामरहित, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, अनादिनिधन (शाश्वत), एक, तुरीय, भूत, भविष्यत्, वर्तमान में एक रस रहने वाले परब्रह्म से स्वयं प्रकाशरूपी पराशक्ति प्रकट हुई। आत्मा (परमात्मा) से आकाश प्रकट हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी प्रकट हुई। सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा ये पाँच देवता इन पाँच महाभूतों के पाँच स्वामी हैं। इसमें ब्रह्माजी उत्पत्ति करने वाले, विष्णु पालन करने वाले तथा रुद्र संहार करने वाले हैं। सतोगुणरूप विष्णु, रजोगुणरूप ब्रह्मा, तमोगुणरूप रुद्र हैं। देवताओं में पहले ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई । सृष्टि की उत्पत्ति के लिए ब्रह्मा, सृष्टि के पालन अर्थात् विकास करने के लिए विष्णु, सृष्टि के विनाश के लिए रुद्र, भोगों के लिए इन्द्र की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई। लोक, देव, तिर्यकु, नर और स्थावर इन सबकी उत्पत्ति ब्रह्माजी के द्वारा हुई। उनमें मनुष्य आदि का शरीर पंचभूतों के संयोग से बनता

है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, ज्ञान के विषय, प्राण आदि पंच वायु, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (अपेक्षाकृत) स्थूल रचना होने से (इनके मूल कारण को) स्थूल प्रकृति कहा जाता है। कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, ज्ञान के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध), पंचवायु, मन और बुद्धि को सूक्ष्म (लिंग) शरीर कहा जाता है। कारण शरीर तीन गुणों से युक्त है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर सबके होते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय चार अवस्थाएँ होती हैं, तैजस, प्राज्ञ, विश्व और आत्मा ये चार पुरुष इन सब (अवस्थाओं) के अधिपति हैं। विश्व स्थूल का नित्य भोग करने वाला है, तैजस एकान्त का भोग करने वाला है, प्राज्ञ आनन्द का भोगने वाला है और सबका साक्षी (आत्मा) इससे परे कहा जाता है॥७२॥

प्रणतः सर्वदा तिष्ठेत्सर्वजीवेषु भोगतः ।
अभिरामस्तु सर्वासु ह्यवस्थासु ह्यधोमुखः ॥ ७३॥

सर्वव्यापी प्रणव (परमात्मा) जीवों की सभी आनन्दमय अवस्थाओं के भोग के समय अधोमुख अर्थात् उदासीन होकर रहता है॥७३॥

अकार उकारो मकारश्चेति वेदास्त्रयो लोकास्त्रयो
गुणास्त्रीण्यक्षराणि त्रयः स्वरा एवं प्रणवः प्रकाशते ।
अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु ।
उकारः कण्ठतः स्वप्ने मकारो हृदि सुप्तितः ॥ ७४॥

(प्रणव ॐ कार में निहित) तीन अक्षर 'अ' कार, 'उ' कार एवं 'म' कार तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण, तीन अक्षर और तीन स्वर के रूप में प्रणव (ओंकार ही) प्रकाशमान है।'अ' कार समस्त जीवधारियों के जाग्रत् अवस्था में नेत्रों में निवास करता है, सोते समय 'उ' कार कण्ठ में निवास करता है और 'म'कार सुषुप्ति अवस्था में हृदय प्रदेश में निवास करती है॥७४॥

विराड्विश्वः स्थूलश्चाकारः ।
हिरण्यगर्भस्तैजसः सूक्ष्मश्च उकारः ।
कारणाव्याकृतप्राज्ञश्च मकारः ।
अकारो राजसो रक्तो ब्रह्म चेतन उच्यते ।
उकारः सात्त्विकः शुक्लो विष्णुरित्यभिधीयते ॥ ७५॥

मकारस्तामसः कृष्णो रुद्रश्चेति तथोच्यते ।
प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः ॥ ७६॥

प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो भवेत् ।
अकारे लीयते ब्रह्मा ह्युकारे लीयते हरिः ॥ ७७॥

मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते ।
ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने स्यादधोमुखः ॥ ७८॥

एवं वै प्रणवस्तिष्ठेद्यस्तं वेद स वेदवित् ।
अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिनामूर्ध्वगो भवेत् ॥ ७९॥

यह स्थूल विराट् विश्व 'अ' कार ही है, सूक्ष्म तेजस्वी हिरण्यगर्भ के रूप में 'उ' कार कहा जाता है और 'म' कार अव्याकृत (अप्रकट) कारण प्राज्ञ कहा जाता है।'अ' कार की प्रकृति राजसी, वर्ण लाल है, उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा कहा गया है।'उ' कार की प्रकृति सात्त्विक, वर्ण श्वेत है, उसे पालनकर्ता विष्णु कहा गया है। 'म' कार की प्रकृति तामस, वर्ण कृष्ण है, उसे संहारकर्ता रुद्र कहा गया है, इस तरह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र की उत्पत्ति का कारण प्रणव (ॐ) ही कहा गया है। प्रणव ही सबका अनादि कारण परतत्त्व है। 'अ' कार में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा समाहित हैं, उकार में विष्णु समाहित हैं तथा मकार में रुद्र समाहित हैं। एकमात्र प्रणव ही (सर्वत्र) प्रकाशमान रहता है। यह प्रणव ज्ञानी मनुष्यों में ऊर्ध्वमुख एवं अज्ञानी मनुष्यों में अधोमुख वाला कहा गया है। इस प्रकार सर्वत्र समरूप से प्रणव (ॐ कार) ही प्रतिष्ठित है, इसको इस प्रकार से जो जानता है, वही वेदविद् है। ज्ञानी साधकों में यह प्रणव अनाहत रूप से ऊर्ध्वगति वाला होता है॥७५-७९॥

तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
प्रणवस्य ध्वनिस्तद्वत्तदग्रं ब्रह्म चोच्यते ॥ ८०॥

तैलधारवत् अविच्छिन्न, घण्टा के गम्भीर स्वर की तरह प्रणव (ओंकार) की ध्वनि वाला अनाहत नाद होता है, जिसका मूल 'ब्रह्म' कहा जाता है॥८०॥

ज्योतिर्मयं तदग्रं स्यादवाच्यं बुद्धिसूक्ष्मतः ।
ददृशुर्ये महात्मानो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ८१॥

महापुरुषों के द्वारा सूक्ष्म बुद्धि से जानने योग्य प्रणव का वह अग्रभाग (मूल) प्रकाशमय और वाणी से परे है, इस प्रकार से जानने वाला महात्मा ही वेदविद् है॥८१॥

जाग्रन्नेत्रद्वयोर्मध्ये हंस एव प्रकाशते ।
सकारः खेचरी प्रोक्तस्त्वंपदं चेति निश्चितम् ॥ ८२॥

हकारः परमेशः स्यात्तत्पदं चेति निश्चितम् ।
सकारो ध्यायते जन्तुर्हकारो हि भवेद्धृवम् ॥ ८३॥

दोनों नेत्रों के बीच जाग्रत् अवस्था में हंस ज्योतित रहता है।'स' कार खेचरी के रूप में कहा गया है, जो निश्चित रूप से त्वं' का स्वरूप है। 'ह' कार पद परमात्मा का द्योतक है, जो निश्चित रूप से 'तत्' पद के रूप में है। जो भी प्राणी 'स' कार का ध्यान करता है, वह निश्चित रूप से 'ह' कार रूप हो जाता है। यही सोऽहम् और तत्त्वमसि की साधना है॥८२-८३॥

इन्द्रियैर्बध्यते जीव आत्मा चैव न बध्यते ।
ममत्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः ॥ ८४॥

जीव को इन्द्रियाँ बन्धन में बाँधती हैं, आत्मा को इन्द्रियाँ नहीं बाँध सकती हैं। जब तक ममता होती है, वह जीव रहता है, ममता के बन्धन समाप्त हो जाने पर कैवल्य रूप हो जाता है॥८४॥

भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
यस्य मात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८५॥

सूर्य, चन्द्र और अग्नि देवता एवं भू:, भुवः, स्व: लोक जिसकी मात्राओं में स्थित रहते हैं, वह परम प्रकाशरूप ओंकार है॥८५॥

क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी ।
त्रिधा मात्रास्थितिर्यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८६॥

परम प्रकाशमान ओंकार की तीन मात्राओं में क्रिया, इच्छा और ज्ञान तथा ब्राह्मी, रौद्री एवं वैष्णवी शक्तियाँ विराजमान हैं॥८६॥

वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा तत्समभ्यसेत् ।
मनसा तज्जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८७॥

सदैव वाणी से उसका जप करे तथा शरीर से उसी के प्रति आचरण करना चाहिए । मन से उसी को जप करते हुए उसी परमप्रकाशरूप ओंकार में स्थिर हो जाए॥८७॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा ।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ८८॥

पवित्र या अपवित्र किसी भी अवस्था में ओंकार का जप करने वाला पाप-पंक में नहीं फँसतो, संसार में वह जल से अलिप्त पद्मपत्र की तरह निर्लिप्त बना रहता है॥८८॥

चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ ८९॥

जब तक वायु चलती रहेगी, तब तक बिन्दु भी चलायमान होगा, वायु के स्थिर हो जाने पर योगी स्थिरता (निश्चलता) को प्राप्त हो जाता है। इसलिए वायु की स्थिरता (प्राणायाम) का अभ्यास करना चाहिए॥८९॥

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवो न मुञ्चति ।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ ९०॥

शरीर में जब तक वायु विद्यमान है, तब तक शरीर में जीव स्थिर रहेगा। शरीर से वायु निकल जाना ही मृत्यु है, इस कारण वायु का निरोध (प्राणायाम) करना चाहिए॥९०॥

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवो न मुञ्चति ।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालं भयं कुतः ॥ ९१॥

जीव शरीर से तब तक नहीं निकल सकता, जब तक शरीर में वायु आबद्ध (स्थित) है, जो व्यक्ति दोनों भृकुटियों के बीच में दृष्टि को स्थिर रखता है, वह काल को जीत लेता है, उसे काल का भय कैसा ?॥९१॥

अल्पकालभयाद्ब्रह्मन्प्राणायमपरो भवेत् ।
योगिनो मुनश्चैव ततः प्राणान्निरोधयेत् ॥ ९२॥

ब्रह्मा भी अल्प काल के भय से (अल्पायु से) मुक्ति पाने के लिए प्राणायाम करते हैं। इसलिए प्राण का निरोध करने के लिए योगियों और मुनियों को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए॥९२॥

षड्विंशदङ्गुलिर्हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः ।
वामदक्षिणमार्गेण प्राणायामो विधीयते ॥ ९३॥

यह प्राण हंस रूप है, जो श्वास के माध्यम से छब्बीस अंगुल बाहर आता है। प्राणायाम नासिका के दोनों छिद्रों अर्थात् बायें-दायें मार्ग से करना चाहिए॥९३॥

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणक्षमः ॥ ९४॥

सभी प्रकार के मलों से नाड़ी चक्र के शुद्ध हो जाने पर योगी प्राणों का निरोध करने (प्राणायाम-सिद्ध होने) में समर्थ हो जाता है॥९४॥

बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
धारयेद्वा यथाशक्त्या भूयः सूर्येण रेचयेत् ॥ ९५॥

योग का अभ्यास करने के लिए बद्ध पद्मासने लगाकर चन्द्र नाड़ी (बायें स्वर) के द्वारा वायु को भीतर खींचे-पूरक करे, पुनः कुछ समय भीतर रोके-कुम्भक करे, फिर सूर्य नाड़ी (दायें स्वर) के द्वारा रेचन करे अर्थात् बाहर निकाले॥९५॥

अमृतोदधिसंकाशं गोक्षीरधवलोपमम् ।
ध्यात्वा चन्द्रमसं बिम्बं प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ ९६॥

प्राणायाम के समय अमृत समुद्र से निकले हुए गो-दुग्ध के समान श्वेत वर्ण के चन्द्रबिम्ब का ध्यान करने से साधक सुखी होता है॥९६॥

स्फुरत्प्रज्वलसंज्वालापूज्यमादित्यमण्डलम् ।
ध्यात्वा हृदि स्थितं योगी प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ ९७॥

पुनः हृदयकमल में स्थित प्रज्वलित ज्वालासदृश भगवान् सूर्य के ध्यान के साथ प्राणायाम करना योगी के लिए सुखदायी होता है॥९७॥

प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचये-
त्पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद्वामया ।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिन्दुद्वयं ध्यायतः
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनो मासद्वयादूर्ध्वतः ॥ ९८॥

प्राणायाम में सर्वप्रथम इड़ा नाड़ी अर्थात् बायें स्वर से श्वास खींचे (पूरक करे) । पुनः पिंगला नाड़ी अर्थात् दायें स्वर से श्वास का रेचन करे (पुन: इसके विपरीत करे) । इस प्रकार प्राणायाम करते समय चन्द्र और सूर्य दोनों का पूर्व वर्णित तरीके से ध्यान का अभ्यास करने पर मात्र दो महीने में नाड़ीशोधन हो जाता है॥९८॥

यथेष्टधारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात् ॥ ९९॥

नाड़ीशोधन प्राणायाम' करने से नाड़ी शुद्ध होने पर वायु को यथेष्ट धारण करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है तथा आरोग्य के लाभ के साथ जठराग्नि प्रबल हो जाती है और दिव्यनाद सुनाई पड़ने लगता है॥९९॥

प्राणो देहस्थितो यावदपानं तु निरुन्धयेत् ।
एकश्वासमयी मात्रा ऊर्ध्वाधो गगने गतिः ॥ १००॥

प्राणायाम में कुंभक की स्थिति में जब तक वायु भीतर रुकी रहे, तब तक अपान वायु को भी रोके रखे। इस प्रकार हृदयाकाश में एक श्वास की मात्रा ऊपर और नीचे गमनशील होती है॥१००॥

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेदेवं मात्राद्वादशसंयुतः ॥ १०१॥

प्राणायाम की पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीनों क्रियाएँ साक्षात् प्रणव का ही रूप हैं (इस चिन्तन के साथ) द्वादश मात्रायुक्त प्राणायाम करना चाहिए॥१०१॥

मात्राद्वादशसंयुक्तौ दिवाकरनिशाकरौ ।
दोषजालमबध्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ॥ १०२॥

सूर्य और चन्द्र का यह द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम साधक के सभी दोषों को समाप्त कर देता है॥१०२॥

पूरकं द्वादशं कुर्यात्कुम्भकं षोडशं भवेत् ।
रेचकं दश चोङ्कारः प्राणायामः स उच्यते ॥ १०३॥

पूरक में द्वादश मात्रा, कुम्भक में षोडश मात्रा और रेचक में दस मात्रा के प्राणायाम को ओंकार प्राणायाम कहा जाता है॥१०३॥

अधमे द्वादशमात्रा मध्यमे द्विगुणा मता ।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥ १०४॥

यह प्राणायाम द्वादश मात्रा का सामान्य कोटि का, इससे दुगुनी मात्रा का मध्यम स्तर की और उसकी तिगुनी अर्थात् छत्तीस मात्रा का प्राणायाम उत्तम कोटि का होता है॥१०४॥

अधमे स्वेदजननं कम्पो भवति मध्यमे ।
उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ १०५॥

अधम अर्थात् सामान्य प्राणायाम पसीना लाने वाला होता है, मध्यम प्राणायाम में शरीर काँपने लगता है। तथा उत्तम कोटि के प्राणायाम में शरीर आसन से ऊपर उठने लगता है, इसलिए इसी तरह का प्राणायाम करना चाहिए॥१०५॥

बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम् ।
नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ १०६॥

योग का अभ्यास करने के लिए एकान्त में बद्धपद्मासन लगाकर बैठे और शिवस्वरूप गुरु को नमस्कार करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए॥१०६॥

द्वाराणां नव संनिरुध्य मरुतं बध्वा दृढां धारणां
नीत्वा कालमपानवह्निसहितं शक्त्या समं चालितम् ।
आत्मध्यानयुतस्त्वनेन विधिना घ्रिन्यस्य मूर्ध्नि स्थिरं
यावत्तिष्ठति तावदेव महतां सङ्गो न संस्तूयते ॥ १०७॥

जिन नव द्वारों से वायु का गमनागमन होता है, उनका निरोध करके वायु को रोके और अपान को अग्नि से मिलाकर ऊर्ध्वगामी बनाकर शक्तिचालिनी मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी मार्ग से दृढतापूर्वक ऊपर मस्तिष्क में आत्मा के ध्यान के साथ स्थापित करे। जब तक यह स्थिर रहे, तब तक वह (अन्य) महापुरुष की संगति नहीं चाहता अर्थात् वह स्वयं सर्वश्रेष्ठ हो जाता है॥१०७॥

प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः ।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥ १०८॥

संसार-सागर से मुक्ति के लिए यह प्राणायाम महासेतु के सदृश है और पाप रूपी ईंधन को जलाने वाले अग्नि की तरह है, ऐसा योगियों द्वारा प्राय: कहा जाता है॥१०८॥

आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम् ।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति ॥ १०९॥

योग के आसनों से (शारीरिक) रोग समाप्त होते हैं, प्राणायाम करने से पापों का विनाश होता है तथा प्रत्याहार करने से मानसरोग (विकार) समाप्त होते हैं॥१०९॥

धारणाभिर्मनोधैर्यं याति चैतन्यमद्भुतम् ।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ॥ ११०॥

योग की धारणाशक्ति द्वारा योगी का मन धैर्यवान् बनता है, समाधि से जीव के शुभाशुभ कर्म समाप्त हो जाते हैं तथा मुक्ति मिल जाती है॥११०॥

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ।
प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा शुभा ॥ १११॥

धारणाद्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः ।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥ ११२॥

बारह बार प्राणायाम करने से प्रत्याहार की स्थिति बनती है तथा बारह बार इसी तरह प्रत्याहार करने से शुभफलदात्री धारणा की सिद्धि होती है। इसी प्रकार धारणा की द्वादश आवृत्ति पर ध्यान बनता है तथा द्वादश बार ध्यान होने पर समाधि अवस्था प्राप्त होती है, ऐसा योग के विशारदों का मत है॥१११-११२॥

यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।

तस्मिन्दृष्टे क्रियाकर्म यातायातो न विद्यते ॥ ११३॥

समाधि की स्थिति में साधक परमप्रकाशरूप अनन्त विश्वतोमुख अर्थात् सर्वत्र समभाव प्राप्त कर लेता है, इस स्थिति को प्राप्त होने पर न तो कुछ करना शेष रहता है, न किये हुए कर्म मनुष्य को बन्धन में डालते हैं, इससे आवागमन से छुटकारा मिल जाता है॥११३॥

संबद्धासनमेढ्रमङ्घ्रियुगलं कर्णाक्षिनासापुट-
द्वाराद्यङ्गुलिभिर्नियम्य पवनं वक्त्रेण वा पूरितम् ।
बध्वा वक्षसि बह्वयानसहितं मूर्ध्नि स्थिरं धारये-
देवं यान्ति विशेषतत्त्वसमतां योगीश्वरास्तन्मनः ॥ ११४॥

दोनों पैर की एड़ियों को मेढ़ अर्थात् सीवन स्थान में लगाकर आसन में दृढतापूर्वक बैठे, तत्पश्चात् आँख, कान एवं नाक को अँगुलियों से बन्द करे और मुंह से वायु खींचे। पुनः नीचे से अपान वायु को ऊर्ध्वगामी बनाए, फिर दोनों वायुओं को हृदय प्रदेश में रोके। पुनः ऊर्ध्वगामी बनाकर मस्तिष्क में स्थिर करके मन को उसी में लगाए, इस क्रिया से योगियों को विशेष समत्वभाव प्राप्त होता है॥११४॥

गगनं पवने प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ।
घण्टादीनां प्रवाद्यानां नादसिद्धिरुदीरिता ॥ ११५॥

ऊपर और नीचे दोनों ओर से गतिशील वायु जब आकाशमण्डल (हृदय प्रदेश) में स्थिर होती है, तब साधक को महान् ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, घण्टा आदि वाद्यों की तरह ध्वनि सुनाई पड़ती है तथा नादयोग की सिद्धि होती है॥११५॥

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
प्राणायामवियुक्तेभ्यः सर्वरोगसमुद्भवः ॥ ११६॥

विधिवत् प्राणायाम के अभ्यास से सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम के न करने से यह शरीर रोगों का उत्पत्तिस्थान बना रहता है॥११६॥

हिक्का कासस्तथा श्वासः शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।
भवन्ति विविधा रोगाः पवनव्यत्ययक्रमात् ॥ ११७॥

वायु के विकृत होने के कारण ही खाँसी, श्वास, हिचकी, सिर, कान, आँख की पीड़ा होती है और नाना प्रकार के रोग पैदा होते हैं॥११७॥

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः ।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥ ११८॥

हाथी, सिंह, व्याघ्र आदि हिंस्र पशु जिस प्रकार से धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा वश में होते हैं, उसी तरह प्राणवायु को शनैः-शनैः अभ्यास के द्वारा वश में करे। यदि साधक ऐसा नहीं कर पाता है, तो उसका विनाश हो जाता है॥११८॥

युक्तंयुक्तं त्यजेद्वायुं युक्तंयुक्तं प्रपूरयेत् ।
युक्तंयुक्तं प्रबध्नीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ११९॥

समुचित तरीके से प्राणवायु को खींचे, समुचित तरीके से प्राणवायु को बाहर निकाले तथा समुचित तरीके से ही प्राणवायु को रोकने से सिद्धि प्राप्त होती है॥११९॥

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् ।
यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहरः स उच्यते ॥ १२०॥

आँख आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर भागती हैं, उनको वहाँ से रोकना (और इष्ट साधना में लगाना) प्रत्याहार कहा जाता है॥१२०॥

यथा तृतीयकाले तु रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम् ।
तृतीयङ्गःस्थितो योगी विकारं मनसं हरेदीत्युपनिषत् ।
ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं
माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरण-
मस्त्वनिराकरणं मेस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु

जैसे-जैसे तृतीय प्रहर (सायंकाल) होता जाता है, वैसे ही सूर्य अपने प्रकाश को समेटता जाता है और सायंकाल को पूरी तरह समेट लेता है, ठीक उसी प्रकार योगी अपनी साधना का स्तर बढ़ाते हुए (तीन

अवस्था, तीन गुण, तीन शरीर से आगे बढ़ते हुए) जब अपने तृतीयांग (उच्च योग के तृतीयांग-समाधि) में स्थित हो जाता है, तो वह अपने मन के समस्त विकारों का शमन कर लेता है। यही उपनिषद् (रहस्य विद्या) है॥१२१॥

॥हरिः ॐ॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति योगचूडामण्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ योगचूडामणि उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥